‘पहुँच’ के बारे में एक अलग सोच

सुमन भट्टाचारजी



मुझे वह पल भलीभाँति याद है जब मुझे इस बात का एहसास हुआ कि मैं पढ़ सकती हूँ। तब शायद मैं पाँच बरस की रही होऊँगी। मैं घर पर थी, कहानी की एक किताब हाथ में लिए जमीन पर बैठी थी और एक कहानी को एक–एक शब्द करके पढ़ने की कोशिश कर रही थी। अचानक (कम से कम मुझे तो यही याद है)–मैं शुरू से आखिर तक बिना रुके पूरा वाक्य पढ़ने लगी थी। मैं पढ़ सकती थी! फिर कई वर्षों तक न तो मैंने इस अद्भुत पल के बारे में सोचा और न ही उससे सम्बन्धित बातों के महत्त्व को। जाहिर है, यह सालों पहले शुरू की गई प्रक्रिया का परिणाम था। मेरी माँ रोज सोते समय हमें कहानियाँ पढ़कर सुनाया करती थीं। मैं हमेशा कहानियों की किताबों से घिरी रहती थी। मेरे पिता एक पत्रकार थे और हमारे घर में ढेर सारी छपी हुई सामग्री रखी रहती थी। इन सामग्रियों का होना हमारे घर में एक बुनियादी और सामान्य–सी बात थी जो घर की संरचना में रची–बसी थी। लेकिन यह बात भारत के कुछ ही बच्चों के लिए सही है।

2012 में शिक्षा की वार्षिक स्थिति की रिपोर्ट बनाने के लिए वालिंटियरों ने भारत के 585 जिलों में से 567 जिलों के 3.3 लाख से अधिक घरों का दौरा किया। इनमें हर तरह के घर–बार शामिल थे–कुछ अधिक समृद्ध तो कुछ कम; कुछ में बच्चे थे तो कुछ में नहीं; कुछ में सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे थे तो कुछ में निजी स्कूलों में। ASER 2012 ने पाया कि देश भर में औसतन प्रति दस हजार घरों में से सिर्फ दो घरों में पाठ्यपुस्तकों के अलावा किसी और प्रकार की छपी हुई सामग्री उपलब्ध थी। 2009–11 में ASER Centre द्वारा किया गया पाँच राज्यों के 30,000 विद्यार्थियों का एक अन्य अध्ययन "प्राइमरी स्कूल के भीतर" यह सुझाता है कि ग्रामीण भारत में सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे ऐसे परिवारों से आते हैं जो साक्षरता सामग्री की उपलब्धता के मामले में और भी गरीब हैं।

अब मैं अपने पढ़ना सीखने वाले अद्‌भुत पल वाली कहानी पर लौटूँ तो मुझे याद आता है कि उसके एकदम बाद जो हुआ वह भी बहुत महत्त्वपूर्ण था। मुझे याद है कि मैं बड़े उत्साह के साथ दौड़ती हुई अपनी माँ के पास गई और उन्हें बताया कि मैं पढ़ सकती हूँ.... मैं पढ़ सकती हूँ! मेरी माँ बहुत खुश हुईं और उनकी प्रतिक्रिया ने इस बात की पुष्टि और मेरे इस विश्वास को मजबूत किया कि मैंने कोई महत्त्वपूर्ण चीज हासिल की थी। मेरे भाई की प्रतिक्रिया ने भी बिलकुल अलग तरीके से यह एहसास दिलाया। वह मुझसे तीन साल बड़ा था और मेरी उपलब्धि से अधिक प्रभावित नहीं हुआ – अच्छा, तो मुझे पढ़ना आ गया है, लेकिन इससे क्या। आठ वर्षीय एक बालक के रूप में उसका नजरिया यह था कि पढ़ना सीख लेना तो रोजमर्रा के जीवन का एक सामान्य, साधारण हिस्सा था। मेरे लिए उसकी प्रतिक्रिया इस रूप में महत्त्वपूर्ण थी कि मुझे लगा कि मैं अब उन बच्चों को पीछे छोड़ आई हूँ जो पढ़ नहीं सकते और बड़े बच्चों की श्रेणी में शामिल हो गई हूँ। तो प्रश्न उठता है कि स्कूल तक पहुँचने और पाँच वर्षीय बच्चे के घरेलू जीवन में क्या सम्बन्ध है?

भारत (और दुनिया के अन्य स्थानों) में हमने पहुँच के बारे में बहुत सोचा है। हम प्रायः इन बातों के बारे में सोचते हैं जैसे निकटतम स्कूल की दूरी क्या है? अगर वह दूर है तो क्या घर से स्कूल के लिए कोई सवारी /वाहन उपलब्ध है? क्या स्कूल का रास्ता छोटे बच्चों, लड़कियों के लिए सुरक्षित है? क्या स्कूल में ढालू रास्ता या रैंप है? दूसरे शब्दों में, हम आमतौर पर घर और स्कूल की भौतिक दूरी को पाटने के लिए बच्चों को सक्षम करने के मामले में "पहुँच" के बारे में सोचते हैं।

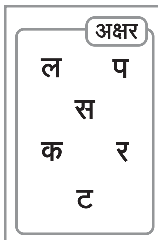
लेकिन अधिगम के लिए पहुँच इससे कहीं अधिक कठिन है। इसमें सन्देह नहीं कि बच्चे स्कूल के अन्दर और बाहर दोनों स्थानों में सीखते हैं। लेकिन बहुत से बच्चों के लिए स्कूल के पाठ्यक्रम की औपचारिक, शैक्षिक सामग्री उनके स्कूल की चारदीवारी के बाहर के अनुभव से बहुत दूर की बात है। ग्रामीण भारत में सर्वत्र ASER के आँकड़े यह बताते हैं कि आज स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों में से 60 प्रतिशत बच्चों की माताएँ ऐसी हैं जो खुद स्कूल नहीं गई हैं। उनके घरों में छपी हुई सामग्री अगर है भी तो बहुत कम है, वे अपने बच्चों को सोते समय कहानियाँ पढ़कर नहीं सुना सकतीं, उन्होंने कभी स्कूल के किसी शिक्षक से बात नहीं की होगी, और शायद उन्हें यह नहीं पता कि बच्चे की भाषा के विकास के लिए कहानियाँ सुनाना भी महत्त्वपूर्ण है।

अब पहुँच के बारे में अलग ढंग से सोचने का समय आ गया है और यह भी समझना होगा कि कई बच्चों के लिए घर एवं स्कूल के बीच की दूरी को तय करना केवल एक भौतिक यात्रा से कहीं अधिक है। और स्कूल का जो वातावरण इस अन्तर को पाटने में मदद करे, वही अधिगम को सक्षम बनाता है खास करके शुरुआती कक्षाओं में। सिर्फ एक इमारत या सड़क निर्माण की तुलना में इस प्रकार का पुल बनाना कहीं अधिक जटिल है क्योंकि यहाँ इस बात को समझने की जरूरत है कि आज बच्चे कहाँ हैं और पनपने में उनकी इस तरह से मदद करनी है जो न तो आसानी से दिखाई देते हैं और न ही मापनीय हैं।

इस प्रकार के पुल मुहैया कराने में हमारे स्कूल कितने कारगर हैं? उपलब्ध साक्ष्य हमें बताते हैं कि हमें इस दिशा में एक लम्बा रास्ता तय करना है। यहाँ तीन उदाहरण प्रस्तुत हैं। पहला उदाहरण शिक्षण की भाषा का है। कई बच्चे, खास करके ऐसे बच्चे जो सामाजिक रूप से पिछड़े समुदायों के हैं, अलग भाषायी पृष्ठभूमि के होते हैं (बोली, शब्दावली व वाक्य रचना की दृष्टि से)। ऐसे बच्चों को कई पुल पार करने की जरूरत होती है। वे न केवल स्कूल आते हैं (और स्कूल आना उनके और उनके परिवार के लिए एक नई बात है), बल्कि उन्हें अकसर एकदम नई भाषा भी सीखनी पड़ती है ताकि वे अपनी इस स्कूली दुनिया में बस सकें। छोटे बच्चे के लिए स्कूल एक औपचारिक स्थान है, जहाँ समय के प्रयोग एवं लोगों के साथ बातचीत करने को लेकर नियम हैं। ये नियम व व्यवहार उनके घर एवं समुदाय के नियमों व व्यवहारों से अलग होते हैं। इसी प्रकार यहाँ एक औपचारिक "स्कूली" भाषा और अभिव्यक्ति की एक शैली है जो स्कूल के बाहर बच्चे की भाषा से अलग है। प्राथमिक स्कूल के भीतर–इस

अध्ययन से पता लगा कि जहाँ घर और स्कूल की भाषा एक हो वहाँ इस बात की सम्भावना अधिक थी कि बच्चे नियमित रूप से स्कूल आएँ और भाषा व गणित विषय के सरल आकलन में बेहतर प्रदर्शन करें। बच्चों को स्कूल का ऐसा वातावरण कम अनजाना लगता है और इसलिए वह अधिक सक्षम भी हो जाता है।

दूसरा उदाहरण पढ़ाए जाने वाली सामग्री से सम्बन्धित है। स्कूल में जो काम बच्चों को सबसे पहले करने को दिए जाते हैं उनमें से एक है भाषा के बुनियादी अंगों में महारत हासिल करना। स्कूल के अपने पहले वर्ष यानि पहली कक्षा में उनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे अक्षर, सरल शब्द एवं लघु वाक्य पढ़ना व लिखना सीखें। यह कोई असम्भव काम नहीं है बशर्ते कि हम सिखाने के तरीकों और सामग्रियों को सावधानी से तैयार करें ताकि हम बच्चों को, आज वे जहाँ हैं, वहाँ से उस मुकाम तक ले जा सकें जहाँ हम स्कूली वर्ष के अन्त में उन्हें देखना चाहते हैं। लेकिन भारत के प्रत्येक राज्य में पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकें बच्चों के लिए काफी कठिन हैं। उदाहरण के लिए ASER 2012 में, राष्ट्रीय स्तर पर, ग्रामीण भारत में कक्षा एक के दस बच्चों में से चार बच्चे वर्णमाला के अक्षरों को नहीं पहचान पाते, शब्दों व वाक्यों को पढ़ना तो दूर की बात है। लेकिन कक्षा एक की पाठ्यपुस्तकें भी बच्चों से यह अपेक्षा करती हैं कि वे पढ़ सकें और पाठ पर आधारित गतिविधियाँ कर सकें जो और भी कठिन हैं(चित्र एक)। एक तो वैसे ही अधिकांश बच्चे पहली कक्षा की इस



4 out of every 10 students in Std 1 and 2 out of every 10 in Std 2 were unable to identify letters (ASER 2012)

Extract from the Std 1 language textbook in Rajasthan

दीवाली आई। घरों और बाज़ारों में सफाई होने लगी।
राधा के घर में भी पुताई हुई। माँ ने घर की सफाई की।
राधा और मोहन ने काम में मदद की। आँगन में रंगोली बनाई।
सामान जमाया। सबने मिलकर घर सजाया।
पिताजी बाज़ार गए। नए कपड़े लाए।
पटाखे लाए। मोहन और राधा बहुत खुश हुए।

चित्र 1
बच्चे का पढ़ना : अपेक्षाएँ एवं वास्तविकता

सामग्री में महारत हासिल नहीं कर पाते, ऊपर से कक्षा दो की पाठ्यपुस्तक और भी अधिक कठिन होती है और हर अगली कक्षा में यही होता है। अधिगम को सक्षम बनाने के लिए पुल उपलब्ध कराने की बजाए हमारे स्कूल के पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकें बड़े व्यवस्थित रूप से बच्चों को पीछे... और पीछे छोड़ती जाती हैं।

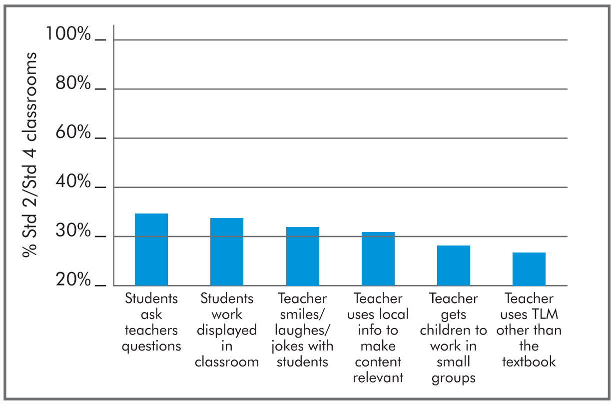
तीसरा उदाहरण बच्चों के अधिगम के लिए "बाल–स्नेही" वातावरण मुहैया कराने से सम्बन्धित है जिससे बच्चे स्कूल में अपने को आश्वस्त, सुरक्षित और सम्मानित महसूस करें। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) एवं बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009) – दोनों ही बच्चों की धारण क्षमता और अधिगम के लिए अधिगम के बाल–स्नेही वातावरण के महत्त्व पर जोर देते हैं। लेकिन मापन पैमाने पर इस बात के बहुत कम सबूत हैं कि वास्तव में भारत में हमारी कक्षाएँ कितनी बाल–स्नेही हैं।

प्राथमिक स्कूल के भीतर–इस अध्ययन ने कक्षा में "बाल स्नेहक" वातावरण के छह बहुत साधारण संकेतकों का उपयोग किया और यह देखने का प्रयास किया कि क्या ये संकेतक पाँच प्रमुख राज्यों के 900 स्कूलों के 1,700 से अधिक प्राथमिक स्कूल की कक्षाओं में मौजूद हैं या नहीं। इन संकेतकों ने प्रत्येक कक्षा के "बाल स्नेहक" वातावरण के कई विभिन्न पहलुओं की बुनियादी झलक प्रस्तुत करने की कोशिश की:

- क्या शिक्षक को कम से कम कुछ विद्यार्थियों के साथ मुस्कुराते हुए, हँसते हुए या मजाक करते हुए पाया गया?
- क्या कम से कम एक विद्यार्थी ने विषय–सामग्री से सम्बन्धित सवाल पूछा?
- क्या बच्चों के काम को कक्षा में प्रदर्शित किया गया था?
- क्या शिक्षक ने शैक्षिक सामग्री को प्रासंगिक बनाने के लिए स्थानीय जानकारी का उपयोग किया?
- क्या शिक्षक ने पाठ्यपुस्तक के अलावा किसी और शिक्षण–अधिगम–सामग्री का उपयोग किया?
- क्या शिक्षक ने बच्चों से छोटे समूहों में या जोड़ों में काम करने को कहा?

1,700 से अधिक कक्षा अवलोकनों से पता चलता है कि नीति में बताई गई बातों और कक्षा में वास्तव में जो कुछ होता है, उनमें बहुत अधिक अन्तर है। 10 में से चार कक्षाओं में इनमें से एक भी संकेतक नहीं पाया गया। इसके विपरीत, 10 में से एक से भी कम कक्षा में इनमें से चार या अधिक संकेतक देखे गए। अवलोकित कक्षाओं के 30 प्रतिशत से अधिक कक्षाओं में इनमें से एक संकेतक भी नहीं पाया गया। (चित्र 2)

प्रभावी शिक्षण एवं निरन्तर अधिगम के लिए जिस प्रकार के समर्थन की आवश्यकता है, उसके लिहाज से नीति एवं



चित्र 2
'बाल स्नेही' कक्षाएँ

व्यवहार के बीच स्पष्ट रूप से एक बड़ा अन्तर नजर आता है। भारत में दार्शनिक, संज्ञानात्मक एवं शिक्षण शास्त्र सम्बन्धी आधार की चर्चाओं पर बहुत ध्यान दिया जाता है जैसे कि बच्चों को कैसे पढ़ाया जाए और बच्चे कैसे सीखते हैं आदि। लेकिन जिस प्रकार से स्कूल की भौतिक पहुँच को सुनिश्चित करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि बच्चे कहाँ रहते हैं, ठीक उसी प्रकार अधिगम की पहुँच को सुनिश्चित करने के लिए यह जानना जरूरी है कि आज बच्चे कहाँ हैं–वे क्या जानते हैं, वे क्या सोचते हैं और वे क्या कर सकते हैं।

मैं अकसर लोगों से यह पूछती हूँ कि क्या उन्हें याद है कि उन्होंने पढ़ना कब सीखा। कुछ लोगों को याद है। यह एक ऐसा कौशल है जिसे हमने बिना प्रमाण के ही मान लिया है कि पढ़ना तो बस आ जाता है। इस लेख को पढ़ने वाले दूसरे लोगों की तरह ही, जब मैंने एक बार पढ़ना सीख लिया तो मेरा और छपी हुई सामग्री का रिश्ता कभी खत्म नहीं हुआ। सभी बच्चों को समान अवसर उपलब्ध कराने के द्वारा "अधिगम हेतु सक्षम वातावरण" की शुरुआत होनी चाहिए।

References

- ASER Centre. Annual Status of Education Report (Rural) 2012. New Delhi: ASER Centre
- Bhattacharjea, S, W Wadhwa and R Banerji (2011). Inside Primary Schools: A study of teaching and learning in rural India. New Delhi: ASER Centre
- Ministry of Law and Justice, Government of India. The Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009
- National Council for Educational Research and Training (2005). National Curriculum Framework. New Delhi: NCERT



सुमन भट्टाचारजी ASER केन्द्र, नई दिल्ली में अनुसन्धान निदेशक हैं। वे एक सॉफ्टवेयर डेवलपर, हाईस्कूल शिक्षिका, शिक्षा विशेषज्ञ एवं शोधकर्ता के रूप में काम कर चुकी हैं। उन्हें शिक्षा, लिंग एवं नारी–अधिकार के क्षेत्र में काम करने का व्यापक अनुभव है तथा उन्होंने भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, पाकिस्तान और मैक्सिको सहित कई देशों में सरकारी, निजी, गैर सरकारी व अन्तर–राष्ट्रीय संगठनों में काम किया है। उन्होंने रिसर्च डिजाइन, लिंग व शिक्षा सम्बन्धी कोर्सों को पढ़ाया है और इन क्षेत्रों में अनेक लेखों व पुस्तकों का लेखन या सहलेखन किया है। सुमन ने दिल्ली विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में ऑनर्स के साथ स्नातक की उपाधि पाई और हार्वर्ड विश्वविद्यालय से शिक्षा में स्नातकोत्तर एवं डॉक्टरेट की उपाधि पाई। उनसे sbhattacharjea@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवादः** नलिनी रावल